



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 111-114
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-09-2016
Accepted: 23-10-2016

अन्जु बाला
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग जम्मू
विश्वविद्यालय, जम्मू

भारतीय संस्कृति में पाकशास्त्र का महत्त्व

अन्जु बाला

सारांश

भोजन बनाने या पकाने की क्रिया को पाक कहा जाता है एवं इसको शासित करने वाली विधा पाकशास्त्र कहलाती है। पाकशास्त्र का प्रादुर्भाव वैदिककाल से हो चुका था। आर्य पाक कला से भली-भांति परिचित थे, साथ ही आहार शुद्धि पर विशेष बल देते थे। पाकशास्त्र का ज्ञान होने के कारण ही उचित अन्न ग्रहण करने के विषय में सजग थे, क्योंकि अन्न द्वारा ही प्राणियों का निर्माण होता है— “अन्नाद् भवन्ति भूतानि।” भारतीय संस्कृति में प्रत्येक दिन हमें पवित्रावस्था में तथा उचित भोजन लेने के निर्देश मिलते हैं, क्योंकि संतुलित तथा स्वच्छ भोजन ही मन को निर्मल बनाता है तथा स्वास्थ्य संवर्धन में वृद्धि करता है।

कूटशब्द: पाकशास्त्र, स्वास्थ्यवर्धक, पुरोडाश, विविधता, श्रेयस्कर, आध्यात्मिक, अनुसंधान, विधान

प्रस्तावना

भोजन बनाने या पकाने की क्रिया को पाक कहा जाता है। व्यंजन किस प्रकार निर्मित किये जायें, किस प्रकार उनको स्वादिष्ट बनाया जाए तथा स्वादिष्ट होने के साथ-साथ वह स्वास्थ्यवर्धक भी सिद्ध हो इन सब का ज्ञान हमें पाकशास्त्र से ही होता है। वैदिक मन्त्रों में पुरोडाश पकाने की प्रक्रिया से तो यही स्पष्ट होता है कि पाकशास्त्र का प्रादुर्भाव वैदिककाल से हो चुका था।ⁱ उपनिषद् युग में भी विभिन्न प्रकार के भोजन और पेय प्रचलित थे। कृषि क्रान्ति के कारण लोग अनेक प्रकार के अन्न उपजाते थेⁱⁱ और उन्हें विभिन्न प्रकार से पकाकर खाते थे। इस युग में आर्य अनेक प्रकार के व्यंजन बनाने की कला में सिद्धहस्त थे। विभिन्न प्रकार के अन्नों और वनस्पतियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से परस्पर मिश्रित कर उन्हें पकाते थे। मिश्रित अन्न और वनस्पतियों को पकाने से उनमें जो गुणात्मक परिवर्तन होता था, उससे भी वे परिचित थे।

अतः कहा जा सकता है कि आर्य पाक कला से भली भांति परिचित थे, साथ ही आहार शुद्धि पर विशेष बल देते थे। पाकशास्त्र का ज्ञान होने के कारण ही उचित अन्न ग्रहण करने के विषय में सजग थे, क्योंकि अन्न के द्वारा ही प्राणियों का निर्माण होता है, जैसा कि ‘श्रीमद्भागवत’ में भी कहा गया है— ‘अन्नाद् भवन्ति भूतानि’ⁱⁱⁱ

जिस प्रकार अन्न की विविधता देखी जाती है उसी प्रकार प्राणी जगत में प्राणियों की विविधता है। अन्न शरीर और मन पर अपना प्रभाव छोड़ता है। प्राण शक्ति संवर्धन और संरक्षण हेतु अन्न का कुशलता से अध्ययन करना अनिवार्य है। अन्न से मन और शरीर दोनों प्रभावित होते हैं। प्राण का मन और शरीर दोनों से सम्बन्ध है। कहा भी गया है— ‘जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन’।

इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि जो प्राणी जैसा अन्न खाता है तदनु रूप ही उसकी सन्तति उत्पन्न होती है। अन्न तथा भावी सन्तान का गहरा सम्बन्ध है। प्राणी जैसा अन्न खाता है वैसी उसकी सन्तान होती है^{iv} क्योंकि अन्न का सीधा प्रभाव मानस पर पड़ता है। तभी कहा गया है— अन्नमयं हि सोम्य मनः अर्थात् मन अन्नमय है।^v

मन का शुद्ध रूप सत्व है। गीता में मन को पुष्ट और स्वस्थ रखने के लिए सत्व सतोगुण अर्थात् सात्विक भोजन करने का उपदेश दिया है। भगवान श्री कृष्ण ने सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से खाद्य द्रव्यों को तीन भागों में विभक्त किया है। सरस, स्निग्ध, सारवान और हृदयग्राही आहार सात्विक होता है। अधिक कटु, अम्ल, लवण, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और जलन उत्पन्न करने वाला आहार राजसी है तथा बासी, रसहीन, दुर्गन्ध युक्त, जूठा और अपवित्र आहार तामसिक है। सात्विक आहार से आयु, बल और पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होता है।^{vi}

यह तो स्पष्ट है कि आहार का शरीर के साथ-साथ मन एवं बुद्धि के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। अशुद्ध एवं तामसिक भोजन करने से विकार पैदा होते हैं तथा सात्विक भोजन करने से सात्विक विचार उत्पन्न होते हैं। मन और तन के दोष समूल नष्ट हो जाते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष सिद्ध है। मद्य-मांस आदि पदार्थ मन एवं बुद्धि को विकृत करते हैं परन्तु शरीर पर भी इनका बुरा प्रभाव पड़ता है।

Correspondence

अन्जु बाला
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग जम्मू
विश्वविद्यालय, जम्मू

मांस खाने वाले को रोग जल्दी पकड़ता है क्योंकि मनुष्य को लम्बी आयु, आरोग्य व अच्छे स्वास्थ्य की अभिलाषा रखनी है तो अस्वभाविक भोजन की ओर उन्मुख न होकर अपने मानुषी स्वभाविक भोजन को ग्रहण कर स्वास्थ्य लाभ पाना ही श्रेयस्कर है। जैसा कि कहा गया है— 'बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते'^{vii} अर्थात् मद्य आदि मादक पदार्थ बुद्धि का लोप कर देते हैं। इसलिए कहा गया है कि आहार की शुद्धि होने पर बुद्धि शुद्ध रहती है।

मनुष्य और समाज के लिए नानाविध अतिभयानक दुष्प्रवृत्तियाँ संव्याप्त हैं, परन्तु मांसाहार सबसे घृणित है। यह प्रवृत्ति मनुष्य में निष्टुरता, क्रूरता, निर्दयता, स्वार्थपरता आदि दुर्गुणों की अभिवृद्धि करती है। करुणा, दया, क्षमा, संवेदना, सहानुभूति तथा सौहार्द आदि आध्यात्मिक उत्तम दैवीय गुणों को नष्ट कर देती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो मांसाहार मानवता की स्थापना, स्वास्थ्य और मानसिक स्थिरता के लिए सबसे बड़ी बाधा है। इससे सामाजिक स्वास्थ्य गड़बड़ा जाता है। समाज में अशांति, विद्रोह, क्रूरता और निर्दयता की भावना उपजति है।

भारतीय परम्परागत भोजन की विशेषताएँ विज्ञान की कसौटी पर भी परखी गई हैं, जिनके परिणाम सुखद सामने आये हैं। यदि मानव के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर विविध खाद्य पदार्थों के विविध प्रभाव न होते तो मनीषी गुण और अवगुण की उपयोगिता पर इतना बल न देते। इसी प्रकार हठयोग में तामसिक आहार का निषेध बताया गया है कि तिल, तेल, मद्य, माँस, खट्टा दही, खट्टी छाछ, तिल-पिण्ड; यह मन और इन्द्रियों में उत्तेजना पैदा करते हैं।^{viii} गीता भी कुछ इसी तरह और व्यापकता से युक्त और अयुक्त आहार का निर्देश करते हुए व्यवहारिक आचार को अपनाने की चेतना प्रदान करती है। दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार विहार करने वाले तथा योग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।^{ix}

उपनिषद् तो इन सबों से ऊपर की बात कह कर मानवीय उत्कर्ष की बात करते हैं। सात्विक अन्न का भोक्ता सत्वगुणी, तामसिक अन्न का भोक्ता तमोगुणी होता है। अर्थात् आहार का प्रभाव मानव के समग्र व्यक्तित्व और समग्र स्वास्थ्य पर पड़ता है। आहार का मानवीय प्रवृत्तियों पर जो प्रभाव पड़ता है, आधुनिक अनुसंधान कर्त्ताओं तथा चिकित्सा वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य अशुद्ध आहार करने पर रोगी और क्रोधी हो जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से मांसाहार मनुष्य का स्वाभाविक आहार नहीं है। यह स्थायी स्वास्थ्य की समस्या हल नहीं करता इससे मानसिक, शारीरिक बिमारियाँ उपजती हैं।

अतः धार्मिक, नैतिक, शारीरिक अथवा सामाजिक किसी भी दृष्टि से देखा जाए तो शाकाहार मनुष्य का प्राकृतिक भोजन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की अपेक्षा इससे स्फूर्ति, प्रसन्नता, शक्ति तथा दीर्घ आयु प्राप्त होती है। मनुष्य बहुमुखी स्वास्थ्य की प्राप्ति कर अमृतत्व को प्राप्त होता है।

चरक संहिता के भूमिका भाग के विवरणानुसार गुरु शिष्य से प्रश्न पूछता है कि इस संसार में कौन रोगी नहीं है ? गुरु उत्तर देते हैं कि "जो हितभुक्, मितभुक् एवं ऋतुभुक् होता है, वह निरोगी होता है।" यथा—

कोऽरुक! कोऽरुक ! कोऽरुक !
हिभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक्
सोऽरुक, सोऽरुक, सोऽरुक ।।^x

हितभुक् का अर्थ है हितकारी भोजन करने वाला, मितभुक् का अर्थ है कम भोजन करने वाला एवं ऋतुभुक् का अर्थ है ऋतुओं के अनुसार भोजन करने वाला।

मनुष्य पंच महाभूतों द्वारा निर्मित है। इसका पालन पोषण भी इन्हीं पाँचों द्वारा होता है तथा आहार पृथ्वी तत्त्व को स्थूल रूप से मनुष्य

के लिए हितकारी, स्वास्थ्यवर्धक, स्मरणशक्ति बढ़ाने वाला तथा उत्साह में वृद्धि करने वाला भोजन पथ्य कहलाता है। ऐसा भोजन ग्रहण करने पर मनुष्य रोगों से दूर रहता है। शरीर में होने वाले सभी रोगों का मूल कारण गलत खान-पान है। इस विषय में नानाविध ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। अन्न स्वयमेव एक औषध है।^{xi} यह औषधि बन कर विविध रोगों से मानव को बचा सकती है। अन्न को किस विधि से ग्रहण करना चाहिए इसका ज्ञान पाकशास्त्र के अध्ययन से ही सम्भव है, जिसके फलस्वरूप समाज में रहने वाले मनुष्यों को विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रखा जा सकता है। काश्यप संहिता का वर्णन उस वाक्य की ओर सुस्पष्ट और पुष्ट करता है कि हितकारी भोजन वह है जो मात्रा में कम हो जिसमें रासायनिक और जैविक सभी तत्त्व विद्यमान हों तथा निश्चित समय पर किया जाए। इस प्रकार का आहार मनुष्य को निरोग बनाता है।^{xii}

औपनिषदीय सात्विक पथ्य का समर्थन करते हुए गीता यँ कहती है कि आयु अर्थात् स्वास्थ्य, बुद्धि, बल और प्रीति को बढ़ाने वाला तथा रसयुक्त, चिकना, स्थिर तथा मन को प्रिय लगने वाला पौष्टिक भोजन ही सात्विक पुरुष को प्रिय होता है।^{xiii} शारीरिक विकास की दृष्टि से घृत, दुग्ध, फल, अन्न आदि खाद्य एवं पेय पदार्थों को अपनी पाचन शक्ति और वात, पित एवं कफ प्रकृति के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। अच्छे पोषक तत्त्व युक्त पदार्थ ग्रहण करने पर ही शरीर का पूर्ण विकास संभव है। समुचित प्रकार का भोजन उत्तम स्वास्थ्य का एक अंग है।

अर्थशास्त्रीय विचार में उत्तम भोजन की परख करने के विषय में विचार किया जाए तो माता-पिता, सुहृद, वैद्य, पुण्यात्मा, हंस, मयूर, सारस और चकवे की दृष्टि भोजन में उत्तम समझी जाती है।^{xiv} चकवे के विषय में मत्स्य पुराण में मिलता है कि अन्न में विषादि दोष रहने पर चकवे आँखें मूँद लेते हैं, जिससे विषावत अन्न का पता लग जाता है, अतः भोजन को विषाक्त दृष्टि और विषाक्त भावनाओं से बचाकर खाना ही स्वास्थ्यप्रद हो सकता है।^{xv}

मनुष्य आरम्भ से ही अपने अनुभव-जन्य ज्ञान द्वारा प्रकृति प्रदत्त और प्रकृति के सानिध्य में ही पूर्णफलित तथा सूर्य की धूप से स्वतः पकी खाद्य सामग्री का प्रयोग और चयन करने में सफल हुआ है। उसी प्राकृतिक स्वभावगत प्रवृत्ति ने मानवीय जगत् को पथ प्रदर्शित किया। यह आचार समस्त चेतन प्राणियों के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे पशु पक्षी अपने स्वभावगत प्राकृतिक खाद्यों का ही उपयोग करते हैं तभी तो स्वतन्त्र और स्वस्थ होकर नीले आकाश पर सदा विचरण करते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यह वर्णन मिलता है कि भोजन सदा अपने शरीर के ताप के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। अति शीतल और अति उष्ण भी न हो तथा दूषित और अप्रिय भी न हो। शास्त्रों में भोजन को तभी तो प्राण, ज्येष्ठ, वाजयश, औषध, मधु, विराट कहा है।^{xvi} 'अन्न दीर्घ प्रसिति' (बांधने वाली रस्सी) है, जिससे शरीर में जीवन टिका रहता है। शास्त्रकारों ने भोजन की महिमा को दर्शाते हुए अन्न को शक्ति का कारण, जीवन का मूलाधार बताया है। अध्यवयासी वाग्भट्ट ने प्राकृतिक जीवन जन्य आरोग्य के रहस्य को बताते हुए कहा है जो अपने शरीर की प्रकृति अनुरूप हितकर तथा परिमित मात्रा में अपनी सच्ची कमाई से खाता है वह अस्वस्थ नहीं होता।^{xvii} अथर्ववेद भी पूर्व कथन की पुनरुक्ति करते हुए कहता है— घृतादि पौष्टिक आहार भी स्वपाचन शक्ति के आधार पर ही खाने चाहिए।

उपनिषदों में कहा गया है कि अन्न को शरीर में धारण करना ही यज्ञ है तथा यज्ञ करने वाले सदा मिताहारी होते हैं। गीता में भी यही कहा गया है। अन्न ग्रहण करते समय अन्न के पदार्थ शुद्ध होने चाहिए तथा मात्रा न्यून, जिससे शरीर प्राणों का हवन करके उसको पचा सके और शरीर भी शुद्ध बना रहे। अन्न ग्रहण करना मानो पंचमहाभूतों को आहुति देना है, जिससे शरीर और मन चेतना प्राप्त करता हुआ स्वास्थ्य सम्पन्न बन जाये। प्राचीन समय में दार्शनिक विचारधारा को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था। घर

में भोजन बनाने से लेकर परोसने तक हर कार्य स्वच्छता और पवित्रता की दृष्टि से विधिपूर्वक किया जाता था। भोजन स्वच्छता और सात्विकता से परिपूर्ण होता था।

भोजन व्यापार भी एक दैनिक यज्ञ माना जाता है। वैश्वानर इस नित्य प्रतिदिन यज्ञ के ईश्वर माने जाते हैं। मनुष्य की जठराग्नि के रूप में स्वयं भगवान वैश्वानर स्थित हैं। प्राणवायु और अपान वायु की सहायता से चर्म, चोष्य, लेह्य तथा पेय इन चार प्रकार के भोज्य अन्नों का भक्षण करते हैं।^{lxviii} यथा—

अहं वैश्वानरो भूत्वा पाणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समा युक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

भारतीय संस्कृति में प्रत्येक दिन हमें पवित्रावस्था में भोजन लेने का उपदेश मिलता है क्योंकि संतुलित, स्वच्छ भोजन ही मन को निर्मल बनाता है। वेदों में पारिवारिक जीवन के विकास के लिए पञ्चमहायज्ञ, संस्कार, यम, नियमादि आवश्यक माने जाते थे। दैनिक कार्यों में पञ्चमहायज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान था। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ एवं नृयज्ञ— ये पाँच यज्ञ “पञ्चयज्ञ” अथवा महायज्ञ कहे जाते थे।^{lxix} वेदों का स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है। पितरों को पिण्डदान तर्पण आदि पितृयज्ञ कहलाता है। सांय—प्रातः अग्निहोत्र करना देवयज्ञ है, पञ्चबलि देना भूतयज्ञ और अतिथियों की सेवा अतिथियज्ञ है। ये पञ्चमहायज्ञ मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी माने जाते थे। अतिथियज्ञ के अन्तर्गत गृहस्थ का यह सतत प्रयत्न रहता था कि घर में आये हुए अतिथि के सत्कार में कहीं भी कोई भी त्रुटि न रहे। घर आये हुए अतिथि के साथ गृहस्थ व्यक्ति प्रेमपूर्वक मिलता था। उसके साथ बैठकर परस्पर वार्तालाप करता था। परस्पर बातचीत के दौरान अतिथि की आवश्यकतानुसार तृप्तिकारक पदार्थ सेवा में प्रस्तुत करता था, उसके भोजन की व्यवस्था अपने ही घर में करता था, इसका कारण यह भी था कि तत्कालीन समाज में यह धारणा व्याप्त थी कि यदि गृहस्थ अतिथि से पूर्व भोजन ग्रहण करता है तो उसके घर का समस्त वैभव नष्ट हो जाएगा और उसकी कीर्ति, यश एवं श्री— तीनों ही समाप्त हो जाएगी। इतना ही नहीं, घर का इष्टदेव भी श्रीहीन हो जाएगा। यह एक सौभाग्य का विषय माना जाता था कि घर में अतिथि भोजन को स्वीकार करें क्योंकि इससे गृहस्थ में समस्त पाप नष्ट हुए माने जाते थे।

उन दिनों अतिथि सत्कार निश्चय ही एक बहुत बड़ा यज्ञ माना जाता था। इसीलिए अतिथियों की (आहवनीय अग्नि) भगवान से परितुलना की गयी है^{lxx} और तदनुसार ही अतिथि के लिए भोजन में चावल, जौ आदि पदार्थ परोसे जाते थे। दूध, मांस आदि स्वादिष्ट पदार्थ का भोग पहले अतिथि ही लगाता था। उसके पश्चात् ही गृहस्थ उन्हें ग्रहण करता था। इतना ही नहीं घर में आये हुए अतिथि के आराम की पूरी व्यवस्था की जाती थी। अतिथि की सेवा में प्रयुक्त होने वाले सभी पात्र भी यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पात्रों के समान पवित्र माने जाते थे।

ऐसी मान्यता थी कि जो गृहस्थ अतिथि का विधि विधानपूर्वक सत्कार करता है उसके देवता भी प्रसन्न रहते हैं। त्वष्टा देवता उसे पुष्टि प्रदान करता है। उषा सदैव शुभ सन्देश देती है, सूर्य सदा प्रशंसा करता है, बृहस्पति उसे बल प्रदान करते हैं तथा उसका सदैव गुणगान करते हैं। इस प्रकार सभी देवताओं की छत्रछाया उस गृहस्थ पर बनी रहती है। इन सभी कृपाओं का फल होता है कि उस गृहस्थ का घर प्रचुर मात्रा में धन सम्पदा, उत्तम सन्तान व श्रेष्ठ पशुओं का आश्रय स्थान बना रहता है। प्रकृति भी उसकी सहयोगिनी रहती है। उदय व अस्त होता हुआ सूर्य उसे क्रमशः प्रसन्नता व आश्रय देता है। दिन के मध्य में उसका गुणगान करता है तथा दोपहर में उसे पुष्टि प्रदान करता है। उत्तम मेघ आनन्द की गर्जना करता हुआ प्रशंसा कर प्रकाश करता है तथा पुष्टि की वृष्टि करता हुआ उसका गुणगान करता है। अतिथि

सत्कार करने वाला गृहस्थ ऐहिक एवं पारलौकिक सुख भोग कर मृत्यु के पश्चात् तेजस्वी लोकों को प्राप्त करता है।^{lxxi}

इसके अतिरिक्त भोजन के विषय में कहा गया है कि आयु चाहने वाले मनुष्यों को पूर्व की ओर मुख करके तथा यश चाहने वालों को दक्षिण—मुख, धन की अभिलाषा से पश्चिमाभिमुख और सत्य की इच्छा से उत्तराभिमुख होकर भोजन ग्रहण करना चाहिए।^{lxxii} पूर्व से सूर्य उदय होता है तथा पूर्व दिशा से हमें प्राण ऊर्जा मिलती है। भोजन के विषय में यह सिद्धान्त भी है कि हमें भोजन परमात्मा को समर्पित करने के उपरान्त ही ग्रहण करना चाहिए तथा भोजन ग्रहण करने से पूर्व हाथ, पैर धोकर ही भोजन शुरू करना चाहिए तथा भोजन ग्रहण करने के पूर्व तथा उपरान्त तीन बार आचमन करने का भी विधान था।^{lxxiii}

आहार शरीर के साथ—साथ मन को भी निर्धारित करता है। मन पर प्रतिकूल या अनुकूल प्रभाव हमारे मानसिक, वैचारिक प्रक्रिया का हिस्सा बन जाते हैं। अन्ततः हम वही तय करते हैं जो मानसिक स्तर पर तय करते हैं। अतः जहाँ एक ओर चिन्ता मुक्त होकर सहज शांत मनोभाव से भोजन लेना स्वास्थ्यवर्धक है, साथ ही चबा कर उचित लार युक्त भोजन ही उचित कहा गया है, वहीं दूसरी ओर फटाफट का फार्मूला स्वास्थ्य की हानि करने वाला स्वतः सिद्ध होता है।

आज के युग में इस बात पर ध्यान देने की बहुत आवश्यकता है। आराम से शांत चित्त होकर तथा सुव्यवस्थित ढंग से भोजन ग्रहण करने का प्रचलन जैसे समाप्त ही हो रहा है। आज इंसान अपने जीवन में इतनी तीव्र गति से भाग रहा है कि उसके पास बैठ कर खाना खाने तक का वक्त नहीं है। ऐसे में जिस भागदौड़ में खाना खाया जाता है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। समय पर और उचित भोजन न करने का ही परिणाम है कि हर कोई रोगों से ग्रसित होता जा रहा है।

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार सम्पूर्ण प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, जो पृथ्वी के आश्रय में स्थित है। अन्न से ही वे जीवित रहते हैं। अन्न में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा करता है। जीवनी शक्ति को बनाये रखता है। अतः अन्न ही सभी तत्त्वों में सर्वोपध रूप माना गया है। अन्न से ही समस्त प्राणी उद्भूत हैं। अन्न प्राणियों के प्राण और समग्र स्वास्थ्य का आधार स्तम्भ है।^{lxxiv} गीता, उपनिषद्, ब्राह्मण, सूत्रादि ग्रन्थों के अनुसार हितकर परिमित भोजन ही नियमित रूप से लेना शरीर और मन के स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

अतः सात्विक परिमित आहार जैसी कोई उत्तम दवाई नहीं है। उपयुक्त भोज्य पदार्थों के समुचित प्रयोग से व्यक्ति स्वस्थ रह सकता है। आहार पर ध्यान दिये बिना औषध से पूर्ण लाभ नहीं हो सकता और ऐसा तभी सम्भव है जब हमें पाकशास्त्र की समुचित जानकारी होगी। इसके अतिरिक्त पाकशास्त्र का विस्तृत अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में जिन विभिन्न व्यंजनों का प्रयोग होता था, वह स्वास्थ्य की दृष्टि से कितने लाभकारी थे, उनमें से बहुतों का आज भी प्रयोग किया जाता है, परन्तु आज उनके नामों में परिवर्तन हो चुका है। अतः इनका ज्ञान होना हमारे लिए अत्यावश्यक है, जिससे कि समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी भोजन की उचित मात्रा को ध्यान में रखे तथा कैसा भोजन उनके लिए हितकर होगा यह समझना सरल हो पायेगा। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समाज दर्शन में पाकशास्त्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि त्रिविध प्रकार के आहारों के कारण मनुष्य के अंदर त्रिविध प्रकार की मनोवृत्तियां यथा— सात्विक, तामसिक एवं राजसिक उत्पन्न होती हैं जिनके चलते उनका चिन्तन या दर्शन भी प्रभावित होता है। अतएव हितभुक्, ऋतुभुक् एवं मितभुक् को अपनाने के साथ—साथ सात्विक आहार ही सुष्ट समाज की स्थापना में सहायता प्रदान करेगा, इसमें कोई दो राय नहीं है।

निष्कर्षः भारतीय संस्कृति में पाकशास्त्र का महत्त्व प्राचीनकाल से रहा है। पाकशास्त्र का विस्तृत अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही उचित आहार को जीवन का अंग माना गया है। प्राचीन मनीषियों ने सदैव उचित एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार का ही प्रयोग किया, क्योंकि आहार का शरीर के साथ-साथ मन एवं बुद्धि के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम जैसा भोजन ग्रहण करेंगे हमारा स्वभाव भी वैसा होगा। उचित तथा स्वास्थ्यवर्धक आहार का ज्ञान होना अत्यावश्यक है, जिससे अपने जीवन को निरोगी बनाया जा सके। अतः सभी को उचित संतुलन तथा उचित भोजन का चयन करके ही ग्रहण करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्तमान काल में मनुस्मृति की प्रासंगिकता, डॉ० शीबा प्रवीन, परिमल पब्लिकेशन्स प्र० सं०, 2007
2. उपनिषद्कालीन समाज एवं संस्कृति, डॉ० राजेन्द्रकुमार त्रिवेदी, परिमल पब्लिकेशन्स
3. उपनिषद्दुगीन संस्कृति, डॉ० वेदवती, वैदिक नाग पब्लिशर्स, ए/यू० ए०, जवाहर नगर दिल्ली, प्र० सं० 2003
4. आयुर्वेद का सुबोध इतिहास, डॉ० कन्हैया लाल तिवारी, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली
5. बृहदारण्यकोपनिषद्, डॉ० मनुदेव बन्धु, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली
6. ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० बलवीर आचार्य, विद्यानिधि प्रकाशन संस्करण, 2005
7. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, रामजी उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
8. भारतीय संस्कृति का इतिहास, स्व० प्रो० कालीशंकर भटनागर, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, तृतीय संस्करण 1971-72

ⁱ सः न पितेव सूनवेऽने सूपायनो भव।

सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ऋ०, 1/1/19

ⁱⁱ अन्नं बहुकुर्वीत ॥ तै० उप०, 3/6/1

ⁱⁱⁱ गीता 3/14

^{iv} यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद् भूय एव भवति ॥

छा० उप०, 5/10/6

^v अन्नमयं हि सोम्य मनः। छा० उप०, 6/5/4

^{vi} आयुः सत्त्वचलारोग्य.....आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ गीता, 17/8

^{vii} आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

स्मृति लम्बे सर्व ग्रन्थी नां विप्रमोक्षः ॥ मुण्डकोपनिषद्, 7/26/2

^{viii} सुस्निग्धमधुरं..... मितहारः स उच्यते । हठयोग, 58

^{ix} युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥ गीता, 6/17

^x चरक संहिता, भूमिका भाग

^{xi} अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते याः.....।

अन्नं.....तस्मात् सर्वौषधमुच्यते ॥ तै० उप०, 2/2

^{xii} शक्यतेऽप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुनिरामयः ।

तदात्मवान हिमितं काले भुज्जीतपद्मसम् ॥ कश्यप०सं० पृ० 246

^{xiii} गीता-17/8

^{xiv} पितृ मातृ सुहृद वैद्यपुण्य कुदघसबर्हिणाम् ।

सारसस्य चोरस्य भोजनं दृष्टिरुत्तमम् ॥ अर्थशास्त्र

^{xv} चकोरस्य विरज्येते नयने विषदर्शनात् ॥ म० पु०

^{xvi} अन्नं वै मधु। ऐ० ब्रा०, 1/1/3

^{xvii} अन्नं वै वाजः यशोऽन्नम। अन्नं वै विराट

तस्माद्यस्यैवैह भूयिष्ठमन्नं भवति, स एव भूयिष्ठं लोके विराजति,

तद विराजो विराटत्वम, विस्वेषु राजति श्रेष्ठः स्वानां भवति ॥

^{xviii} अहं वैश्वानरो भूत्वा पाणिनां देहमाश्रितः।

प्राणापान समा युक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ गीता, 15/14

^{xix} देवयज्ञं पितृयज्ञं भूतयज्ञं तथैव च।

मानुष्यं ब्रह्मयज्ञं व पञ्च यज्ञान् प्रचक्षते ॥ कूर्म पुराण, 2/8/102

^{xx} अथ यदातिथ्येन यजन्ते विष्णुमेव देवतां यजन्ते ॥ शत०ब्रा०, 12/1/3/4

^{xxi} अथर्ववेद, काण्ड 9, सूक्त 6

^{xxii} आयुष्यं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।

श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्यदङ्मुखः ॥ मनु० 2/52

^{xxiii} उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमघात्समाहितः।

भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यग्दि भः खानि च संस्शेत् ॥ मनु०, 2/53

^{xxiv} अन्नं हि प्राणिनां प्राणः, अन्नं ब्रह्मोति व्यजनात् ।

अन्नादै खल्वि मानि भूतानि जायन्ते, अन्नेन् जातानि जीवन्ति।